(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य । एक अंक ≡)

वर्ष ६ } मथुरा, १ अक्टूबर सन् १९४५ ई० { अंक १०

जीवन को तपस्या मय बनाइए ।

प्रकृति का नियम है कि संघर्ष से तेजी आती है। रगड़ और घर्षण यद्यपि देखने में कठोर कर्म प्रतीत होते हैं पर उन्हीं के द्वारा सौन्दर्य का प्रकाश होता है। सोना तपाये जाने पर निखरता है। नानाविधि कष्ट दायक संस्कारों पर संस्कृत होने से ही किसी वस्तु को महत्व प्राप्त हुआ है। धातु का एक रद्दी सा टुकड़ा जब अनेक विधि कष्ट दायक परिस्थियों के बीच में होकर गुजर जाता है तब उसे भगवान् की मूर्ति [illegible], या ऐसा ही अन्य महत्वपूर्ण गौरवमय पद प्राप्त होता है।

जीवन वही निखरता है जो कष्ट और कठिनाइयों से टकराता रहता है। विपत्ति बाधा और [illegible]इयों से जो लड़ सकता है, प्रतिकूल परिस्थितियों से युद्ध करने का जिसमें साहस है, उसे ही—सिर्फ [illegible] ही—जीवन विकाश का सच्चा सुख मिलता है। इस पृथ्वी के पर्दे पर एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ [illegible]जिसने बिना कठिनाई उठाये, बिना जोखिम ओढ़े, कोई बड़ी सफलता प्राप्त करली हो।

कष्ट मय जीवन के लिए अपने आप को खुशी खुशी पेश करना—यही तप का मूल तत्व है। [illegible]पस्वी लोग ही अपनी तपस्या से इन्द्र का सिंहासन जीतने में और भगवान् का आसन डुलादेने में समर्थ [illegible]हो हैं। मनोवाञ्छित परिस्थितियां प्राप्त करने का एक मात्र—केवल मात्र—ही साधन, इस संसार है। और वह है—तपस्या। स्मरण रखिए सिर्फ वे ही व्यक्ति इस संसार में महत्व प्राप्त करते हैं जो कठिनाइयों के बीच हँसना जानते हैं, जो तपस्या में आनन्द मानते हैं।

———

'अखंडज्योति' का अमूल्य प्रकाशन !

जो ज्ञान कठिन के प्रयत्न से मिलता है, उसे हम अनायास ही आपके संमुख उपस्थित करते हैं

यह बाजारू पुस्तकें नहीं है। इनकी एक एक पंक्ति में लेखकों का चिरकालीन अनुभव औ अभ्यास भरा हुआ है। इन पुस्तकों को पढ़कर आप वह लाभ प्राप्त करेंगे जो इनके मूल्य पैसों से अनेक गुना अधिक है।

(१) मैं क्या हूं ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) परकाया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१७) गहना कर्मणोगति ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
(१९) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२०) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी ।=
(२६) आध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=
(२८) ज्ञान योग कर्म योग भक्तियोग ।=
(२९) यम नियम ।=
(३०) आसन और प्राणायम ।=
(३१) प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि ।=
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=
(३३) आकृति देख कर मनुष्य की पहिचान ।=
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=
(३६) हस्तरेखा विज्ञान ।=
(३७) विवेक सतसई
(३८) संजीवनी विद्या ।=
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=
(४०) महान जागरण ।=
(४१) तुम महान हो ।=
(४२) गृहस्थ योग ।=
(४३) अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।
(४४) घरेलू चिकित्सा ।=
(४५) बिना औषधि के कायाकल्प ।
(४६) पंच तत्वों द्वारा संपूर्ण रोगों का निवारण
(४७) हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ?
(४८) विचार करने की कला

कमीशन देना क़तई बन्द है। हां आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें मँगाने पर रजिस्ट्री पार्सल का डाक खर्च ग्राहक को देना पड़ता

पता—मैनेजर "अखण्ड ज्योति" मथुरा।

सूचना—अखंड ज्योति के पुराने अंकों की अक्सर पाठक मांग किया करते हैं। परन्तु की दुर्लभता के कारण फालतू अंक बचते नहीं। सन् ४० से ४५ तक के ५ वर्षों के कुल मिलाकर हमारे पास मौजूद हैं। इनका मूल्य १।।) और रजिष्टी से भेजने का अतिरिक्त खर्च ≡) आवश्यकता हो १।।≡) भेजकर पिछले १२ अंक प्राप्त कर सकते हैं।

मथुरा १ अक्टूबर सन् १९४५

ईश्वर का भजन।

गरुण पुरुष अध्याय २३ का एक श्लोक है—

भज इत्येव वै धातुः सेवायां परिकीर्तिता।
तस्मात्सेवाबुधै प्रोक्ता भक्तिः साधन भूयसी॥

श्लोक का तात्पर्य है कि—'भज' धातु का अर्थ वा है। (भज्-सेवायां) इस लिए बुध जनों ने भक्ति का साधन सेवा कहा है। 'भजन' शब्द भज् ातु से बना है जिसका स्पष्ट अर्थ सेवा है। 'ईश्वर का भजन करना चाहिए" जिन शास्त्रों ने इस महा मंत्र का मनुष्य को उपदेश दिया है उनका तात्पर्य ईश्वर की सेवा में मनुष्य को प्रवृत्त करा देना था। जिस विधि व्यवस्था से मनुष्य ी ईश्वर की सेवा में तल्लीन होजाय वही भजन है इस भजन के अनेक मार्ग हैं। अध्यात्म मार्ग के आचार्यों ने देश काल और पात्र के भेद को ध्यान में रख कर भजन के अनेकों कार्यक्रम बनाये और बताये हैं। विश्व के इतिहास में जो जो अमर विभूतियां, महान आत्माऐं, सन्त, सिद्ध, जीवन मुक्त, ऋषि एवं अवतार हुए हैं उन सभी ने भजन किये हैं और कराये हैं पर उन सबके भजनों की प्रणाली एक दूसरे के समान नहीं है। देश काल और परिस्थिति के अनुसार उन्हें भेद करना पड़ा है, यह भेद होते हुए भी मूलतः भजन के आदि भूत तथ्य में किसी ने अन्तर नहीं आने दिया है।

भजन (ईश्वर की सेवा) करने का तरीका ईश्वर की इच्छा और आज्ञा का पालन करना है। सेवक लोग अपने मालिकों की सेवा इसी प्रकार किया भी करते हैं। एक राजा के शासन तंत्र में हजारों कर्मचारी काम करते हैं। इन सबके जिम्मे काम बंटे होते हैं। हर एक कर्मचारी अपना अपना नियत काम करता है। अपने नियत कार्य को उचित रीति से करने वालों की राजा की कृपा पात्र होती है, उसके वेतन तथा पद में बृद्धि होती है, पुरष्कार मिलता है, खिताब आदि दिये जाते हैं। जो कर्म- अपने नियत कार्य में प्रमाद करता है वह राजा का कोप भाजन बनता है, जुर्माना,मौत्तिल्ली,तनुख्वा में तनज्जुली,बर्खास्तगी या अन्य प्रकार की सजाऐं पाता है। इन नियुक्त कर्मचारियों की सेवा का उचित स्थान उन्हीं कार्यों में है जो उनके लिए नियत हैं। रसोइये, महतर, पंखा झलने वाले कहार, धोबी, चौकीदार, चारण, नाई आदि सेवक भी राजा के यहां रहते हैं वे भी अपना नियत काम करते हैं। परन्तु इन छोटे कर्मचारियों में से कोई ऐसा नहीं सोचता कि राजा की सर्वोपरि कृपा हमारे ही ऊपर है। बात ठीक भी है राजा के अभीष्ट उद्देश्य को सुव्यवस्थित रखने वाले राज मंत्री, सेनापति, अर्थमंत्री, व्यवस्थापक न्याया ध्यक्ष आदि उच्च कर्मचारी जितना आदर, वेतन, और आत्मभाव प्राप्त करते हैं, वेचारे महतर, रसोइये आदि को वह जीवन भर स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता।

राज्य के समस्त कर्मचारी यदि अपने नियत कार्यों में अरुचि प्रकट करते हुए राजा के रसोइये, महतर, कहार, धोबी चारण आदि बनने के लिए

दौड़ पड़ें तो राजा को इससे तनिक भी प्रसन्नता और सुविधा न होगी। हजारों लाखों रसोइयों द्वारा पकाया और परोसा हुआ भोजन अपने सामने देख कर राजा को भला क्या प्रसन्नता हो सकती है? यद्यपि इन सभी कर्मचारियों का राजा के प्रति अगाध प्रेम है और प्रेम से प्रेरित होकर ही उन्होंने व्यक्ति गत शरीर सेवा की ओर दौड़ लगाई है, पर ऐसा विवक रहित प्रेम करीब २ द्वेष जैसा ही हानि कर पड़ता है। राज्य के आवश्यक कार्य में हर्ज और अनावश्यक कार्य की वृद्धि यह कार्य प्रणाली किसी बुद्धिमान राजा को प्रिय नहीं हो सकती।

ईश्वर राजाओं का महाराज है। हम सब उसके राज्य कर्मचारी हैं, सबके लिए नियत कर्म उपस्थित हैं। अपने अपने उत्तरदायित्व की उचित रीति में पालन करते हुए हम ईश्वर की इच्छा और आज्ञा को पूरा करते हैं और इस प्रकार सच्ची सेवा करते हुए स्वभावतः उसके प्रिय पात्र बन जाते हैं। राजाओं को व्यक्तिगत सेवा की आवश्यकता भी है परन्तु परमात्मा को रसोइये, महतर कहार चारण चौकीदार आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। वह सर्वव्यापक है, वासना और विकारों से रहित है, ऐसी दशा में उसके लिए भोजन, कपड़ा, पंखा, रोशनी आदि का कुछ उपयोग भी नहीं है।

ध्यान, जप, स्मरण-कीर्तन, व्रत पूजन, अर्चन, वन्दन, यह सब आध्यात्मिक व्यायाम हैं। इनके करने से आत्मा का बल और सतोगुण बढ़ता है। आत्मोन्नति के लिए इन सबका करना आवश्यक और उपयोगी भी है। परन्तु इतना मात्र ही ईश्वर भजन या ईश्वर भक्ति नहीं है। यह भजन का एक बहुत छोटा अंश मात्र है। सच्ची ईश्वर सेवा उसकी इच्छा और आज्ञाओं को पूरा करने में है, उसकी फुलवारी को अधिक हराभरा फला फूला बनाने में है। अपने नियत कर्तव्य करते हुए अपनी और दूसरों की सात्विक उन्नति में लगे रहना ! को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय हो सकता है

इस्लामी धर्म पुस्तकों में एक कथा मिलती कि एक इस्लाम प्रचारक ऋषि के आगे से देव निकला। उसके हाथ में एक बहुत बड़ी पुस्त थी। ऋषि ने पूछा—भाई देवदूत, यह पुस्तक कै है? उसने उत्तर दिया—इसमें दुनियां भर के ईश भक्तों के नाम लिखे हैं। ऋषि ने पूछा—क्या इस मेरा भी नाम है। देवदूत ने सारी पुस्तक खो डाली पर कहीं भी उनका नाम न मिला। इस प ऋषि को बड़ा दुख हुआ कि मैंने खुदा का आ पालन करने में सारा जीवन लगा दिया पर मे नाम भक्तों की सूची में शामिल न हो पाया। कु दिन बाद एक दूसरा देवदूत एक छोटी पुस्तक लि हुए उधर से निकला। ऋषि ने पूछा—इसमें क्य लिखा है? देवदूत ने उन्हें बताया कि इसमें कु ऐसे आदमियों के नाम है जिनकी भक्ति स्वयं ईश्व करता है। ऋषि के आश्चर्य का ठिकाना न रह कि—क्या ऐसे भी लोग हैं जिनकी भक्ति ईश्वर क करनी पड़ती है। पुस्तक पढ़ी गई उसमें सबसे ऊपर उन्हीं ऋषि का नाम लिखा हुआ था। महात्मा कबीर ने भी ऐसा ही कहा है—

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर कबीर॥
कबीर माला ना जपों जिह्वा कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करें मैं पावों विश्राम॥

ईश्वर को प्रसन्न करने की इच्छा से भगवद् भजन करने वालों को भजन का वास्तविक तात्पर्य समझना चाहिए। भजन सेवा के अर्थ में प्रयु हुआ है। परमात्मा की सेवा उसकी चलती फिरती प्रतिमाओं की सेवा में है। उसके बगीचे—को संसार को—अधिक सुन्दर सुख शान्ति मय बनाने का प्रयत्न करने में है; अपने कर्तव्य धर्म को उत्तरदायित्व को एक ईमानदार और सच्चे मनुष्य की तरह पालन करने में है। ईश्वर की इच्छा और

मोक्ष की ओर।

(लेखक—श्री० स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

परमात्मा तुम्हारे भीतर है। वह सब के हृदय-मन्दिर में विराजमान है। जो कुछ तुम देखते, स्पर्श करते अथवा अनुभव करते हो वह सब परमात्मा ही है। इसीलिए किसी से घृणा मत करो, किसी को धोखा मत दो, किसी को नुकसान मत पहुंचाओ। सबसे प्रेम करो और सबके साथ एकता का अनुभव करो। तुम्हें शीघ्र ही शाश्वत आनन्द और अनन्त उल्लास की प्राप्ति होगी।

तुम आत्म नियन्त्रण रखो, स्वयं अनुशासन में रहो। विचारों और अनुभूतियों एवं आहार-परिधान में सादगी और समरसता रखो। सबके साथ प्रेम करो। किसी से डरो नहीं। तन्द्रा आलस्य और भय को उखाड़ फेंको। दैवी जीवन यापन करो। सत्य अथवा वास्तविकता की खोज करो। नियम और धर्म को समझो। जागरूक और सचेत रहो। दुःख और अन्तर्द्वन्दों पर आत्म-निरीक्षण, विचार विवेक द्वारा विजय प्राप्त करो। प्रतिक्षण स्वतन्त्रा. पूर्णता और शाश्वत आनन्द की ओर बढ़ो।

आज्ञा है कि 'अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना की जाय" अपने भीतर, बाहर और सर्वत्र जो इस तथ्य को ध्यान में रखकर कार्य करता है उसी का भजन सच्चा है। लोक कल्याण की दृष्टि से जो अपने और दूसरों के जीवन को उत्तम बनाने के प्रयत्न में तत्परता पूर्वक जुटे हुए हैं वे ही सच्चे भजनानन्दी है।

अखण्ड ज्योति के पाठको! आत्म बंचना में मत भटको, दंभ का आश्रय मत लो, केवल अपने ही स्वर्ग या मुक्ति सुख के स्वार्थ में मत डूबो वरन प्रभु के सच्चा भजन का, सच्ची सेवा का मार्ग तलाश करो, प्रभु के पुत्रों को अधिक सुखी और समृद्ध बनाने वाले लोक कल्याण कारी सत्कार्यों में लग जाओ।

———

क्या तुम में से ऐसा एक भी आदमी है जो बल पूर्वक कह सके कि मैं इस समय योग्य जिज्ञासु हूं। मैं मोक्ष के लिए प्रयत्नशील हूं। मैंने अपने को चतुः साधनों से सुसज्जित कर लिया है। मैंने अपना हृदय निःस्वार्थ सेवा, तप और त्याग द्वारा विशुद्ध बना लिया है। मैंने अपने गुरु देव की विश्वास और भक्ति से सेवा की है और उनसे शुभाशीर्वाद और शुभ कामना प्राप्त करली है। वही मनुष्य संसार को बचा सकता है। वह शीघ्र ही विश्व का प्रकाश स्तम्भ, अद्वितीय ज्ञान ज्योति धारी और सफल योगी होगा।

सेवा के लिये सदैव तत्पर रहो। विशुद्ध प्रेम, दया और सौजन्य के साथ सेवा करो। सेवा काल में कभी भी किच-किच मत करो। सेवा के समय अपने चेहरे पर मायूसी और उदासी कभी न आने दो। जिस आदमी की तुम सेवा करते हो वह तुम्हारी सेवा स्वीकार करने से इन्कार कर देगा। तुम को सुअवसर से हाथ धोना पड़ेगा। सेवा के सुअवसरों की ताक में रहा करो। अवसरों को उत्पन्न करो। सत् सेवा के लिए सत् क्षेत्र तय्यार करो। कार्य की सृष्टि करो।

सेवा के लिए तुम्हारा जीवन पूर्ण भक्ति मय होना चाहिए। तुम्हारे हृदय में उसके लिए पूर्ण उमंग- उत्साह होना चाहिए। दूसरों के लिए तुम्हारा जीवन आशीर्वाद स्वरूप हो जाना चाहिए। यदि तुम इसे प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें अपने दिमाग को ठीक करना होगा। तुम्हें अपना चरित्र निर्मल करना होगा, तुम्हें अपना चरित्र बनाना होगा। तुम्हें सहानुभूति, स्नेह, परोपकार, सहिष्णुता और दया दाक्षिण्य का विकास करना होगा। यदि तुम्हारे विचारों से दूसरों को मत भेद हो तो भी उनसे लड़ो मत। दिमाग अनेक किस्म के हैं। विचार करने की कई शैलियां हैं। अभिमतों में भिन्नता होती है। हर एक आदमी अपने दृष्टि कोण से ठीक होता है। सबके विचारों से समन्वय करो।

दूसरों के विचारों को भी सहानुभूति और ध्यान से सुनो और उन्हें स्थान दो अपने शुद्ध हृदय में और संकीर्ण दायरे से बाहर निकल आओ। दृष्टि को विशाल बनाओ । सर्व प्रिय या उदार विचार के बनो। सबके विचारों का आदर करो । तब और केवल तभी तुम्हारा जीवन सुविशाल होगा, और हृदय भी महान्। तुम्हें भद्रता के साथ मधुरता-पूर्वक सौजन्य से बोलना चाहिये। तुम्हें बहुत कम बात करनी चाहिये। तुम्हें अवांछनीय विचारों और भावनाओं की जड़ को उखाड़ फेंकना चाहिए। तुम्हारे भीतर अभिमान और चिड़-चिड़ापन का लेश भी नहीं होना चाहिये। तुम्हें अपने आपको एकदम भूला देना चाहिये । तुम्हें व्यक्तिगत भाव नहीं रखना चाहिये। सदैव सेवा के लिए यदि तुम पूर्वोक्त गुणों से विभूषित हो जाते हो तो तुम सच-मुच प्रकाश और तेज के पुंज बन जाते हो। विनम्र, दयालु, सहायक बनो। यदा कदा नहीं, किन्तु सदा के लिए, सारे जीवन के प्रत्येक क्षण के लिए। ऐसा एक शब्द भी मत बोलो जिससे दूसरों का दिल दुःखे। बोलने के पहिले सोच कर देखलो कि जो कुछ तुम बोलने जा रहे हो उससे दूसरों का दिल तो नहीं दुःखेगा, दूसरों की भावनाओं पर चोट तो नहीं पहुँचेगी। इस बात का विचार करलो कि यह समझदारी से भरी हुई मधुर, सत्य और सुकोमल है।

ऐ मनुष्य! अब तय्यार हो जाओ । यह शर्म की बात है कि अब तक तुम अपना जीवन केवल खाने पीने, सोने, गप्प लड़ाने और निरर्थक कामों के पीछे व्यर्थ बिताते रहे। अब समय निकट आता जा रहा है। तुमने अब तक कोई विशिष्ट काम नहीं किया। अब भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ है। इसी समय से भगवन् नाम स्मरण शुरू कर दो। निष्कपट और सच्चाई धारण करो । सबकी सेवा करो। इस प्रकार तुम अपने को भगवान का कृपा पात्र बना लोगे।

ब्रह्मचर्य और उपवास।

(महात्मा गान्धी)

ब्रह्मचर्य-साधन के लिए बाहरी उपचारों की भांति जैसे खुराक की किस्म और उसकी मिक़दार की मर्यादा को ज़रूरत है वैसी ही उपवास की भी समझनी चाहिए। इन्द्रियां ऐसी बलवान हैं कि उन्हें चारों ओर से, ऊपर से, नीचे से, यानी दशों दिशाओं से घेरने पर ही वे वश में रहती हैं। यह सब जानते हैं कि बिना भोजन पाये वे काम नहीं कर सकतीं। मैं निःशंक भाव से कह सकता हूं कि इन्द्रिय-दमन के निमित्त इच्छा-पूर्वक किये गये उपवास से इंद्रियों को वश करने में बड़ी मदद मिलती है।

कितने ही लोग उपवास करते हुए भी जो ना-कामयाब रहते हैं उसकी वजह-यह मानकर चलना है कि उपवास ही सब कुछ कर देगा—सिर्फ स्थूल उपवास करना और मन से छप्पन भोगों का मजा लूटना है। वे उपवास-काल में इन विचारों का मजा लूटते रहते हैं कि जब उपवास तोड़ेंगे तो क्या-क्या खायेंगे. और फिर शिकायत करते हैं कि स्वादेन्द्रिय (जिह्वा) और जननेंद्रिय का संयम नहीं हुआ। उपवास की सच्ची उपयोगिता वहीं होती है जहां मनुष्य का मन भी देह-दमन का साथ देता है। मतलब हुआ कि मन में विषयभोग के प्रति वैराग्य होना ज़रूरी है।

विषयों की जड़ें मन में रहती हैं। उपवास आदि साधनों की मदद तो काफी मिलती है तथापि अनुपात में वह कम ही होती है । उपवास करते हुए भी मनुष्य का विषयासक्त रहना संभव है, लेकिन उपवास के बिना विषयासक्ति का जड़ मूल से नाश संभव नहीं है, इसलिए ब्रह्मचर्य के पालन में उपवास अनिवार्य अंग-स्वरूप है।

सहज-योग ।

महात्मा कबीर का वचन है:—

तन को जोगी सब करें मन को करे न कोय ।
सब सिद्धि "सहजै" पाइये, जो मन जोगी होय ॥

इस दोहे में उन्होंने सहज योग से सब सिद्धियां पाने की ओर संकेत किया है । यह सहज योग क्या है ? इसका कुछ परिचय भी इसी पद में मिल जाता है । 'मन को योगी' बना लेना ही सहज योग है । इस योग में तनको योगी बनाने, योगियों की सी वेष भूषा धारण करने के संबंध में उपेक्षा की गई है और इस बात पर जोर दिया गया कि मन को योगी बना लिया जाय । तन से कबीर की भांति जुलाहे का काम करते हुए, रैदास की भांति चर्मकार का काम करते हुए, तुलाधार की भांति व्यापार करते हुए, जनक की भांति राज दरबार करते हुए भी मनुष्य मन को योगी बना सकता है । साधारण वेश भूषा, पेशा, एवं आहार विहार रखता हुआ भी मनुष्य सहज योग की साधना कर सकता है ।

यह साधना कुछ कठिन नहीं है । हर स्थिति के हर मनुष्य के लिए सहज है । इसी तथ्य को ध्यान रखते हुए इसको 'सहज योग' कहा गया है । अस्वाभाविक, अनावश्यक, असत्य, अहितकर, अनुचित बातें हमेशा कठिन दुष्कर और अतीव काम साध्य होती हैं किन्तु जो प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक, सत्य एवं लाभदायक होती हैं व सहज एवं सुलभ होती हैं । जीवन की अत्यंत आवश्यकताओं में सबसे अधिक हवा, फिर पानी, फिर अन्न, फिर वस्त्र आवश्यक है । यह सब चीजें आवश्यकता के अनुपात से ही समुचित मात्रा में उपलब्ध होती है । हवा जिसके बिना कुछ मिनट भी जीवित नहीं रह सकते हर जगह प्रचुर मात्रा में भरी हुई है, इतनी सहज रीति से प्राप्त होती है कि हमें पता भी नहीं चलता और लाखों टन हवा हर रोज शरीर में पहुँचती और निकलती रहती है । इससे कुछ छोटा दर्जा पानी का है पानी के बिना एक दो दिन जीवित रह सकता है अतएव हवा की अपेक्षा पानी कुछ कठिन है । यद्यपि वह मोल नहीं बिकता तो भी उसे प्राप्त करने के लिए कुए तालाब आदि पर जाना पड़ता है लाने में कुछ कष्ट भी उठाना पड़ता है । अन्न का तीसरा नम्बर है, बिना अन्न के आदमी दस बीस दिन जी सकता है, इसलिए वह कुछ अधिक श्रम करने पर मिलता है तो भी संसार में उत्पन्न होने वाले अन्य सभी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक उत्पन्न होता है और हर जगह मिल भी जाता है । वस्त्र का चौथा नम्बर है इसलिए वह अन्न की अपेक्षा अधिक महँगा है । इसी प्रकार जो चीज जीवन के लिए जितनी आवश्यक और सत्य है उसकी प्राप्ति उतनी ही सहज है । जो हानिकर है वह दुर्लभ है । गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारू और उपयोगी पशु झुण्ड के झुण्ड मौजूद हैं किन्तु सिंह, सर्प, आदि दुष्ट हिंसक जीव बहुत ही थोड़ी मात्रा में हैं और सुदूर गुप्त स्थानों में छिपे पड़े रहते हैं, उनके दर्शन हर किसी को नहीं होते, विरले शिकारी या सँपेरे ही उन्हें ढूढ़ पाते हैं । चीनी नमक, दूध, फल, शाक आदि भोज्य पदार्थ सुलभ हैं परन्तु संखिया, सिंदरफ, हलाहल, अफीम, ताड़ी, आदि हानिकारक चीजें दुर्लभ हैं । उन्हें प्राप्त करने के लिए बड़ा खतरा और कष्ट उठाना पड़ता है ।

ईमानदारी सहज है, परन्तु चोरी करने के लिए विशेष साहस चाहिए । सत्य बोलने में कुछ झंझट नहीं, परन्तु असत्य बोलने वाले को बड़ी सावधानी से बंधक बनना पड़ता है । सदाचार में कोई चतुराई नहीं चाहिए हां व्यभिचार करने में सफलता प्राप्त करने के लिए असाधारण कुशलता की

आवश्यकता है। लाभदायक सादा भोजन आसानी से बन जाता है पर गरिष्ठ कुपाच्य पकवानों को बनाने के लिए अधिक समय पैसा और चतुरता की आवश्यकता होती है। धूप, वर्षा, शीत के सुखद परिणाम हमें सदा मिला करते हैं पर तूफान, भूकम्प, युद्ध जैसे बवंडर कभी कभी ही आते हैं। यह एक ठोस सत्य है कि उचित आवश्यक और लाभदायक तत्वों को परमात्मा ने सहज बनाया है कि और अनुपयोगी तत्वों को कठिन बना दिया है, उनकी प्राप्ति दुर्लभ करदी है।

जो योग जीवन के लिए आवश्यक है, उचित है, हितकर है वह अवश्य ही उपरोक्त स्वयम् के अनुसार सहज होना चाहिए। जिसमें अनावश्यक पेचीदगी गूढ़ता, रहस्य, एवं क्रान्ति हो उस योग को भी अनावश्यक एवं ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध समझना चाहिये। तत्व दर्शी कबीर ने इस महा-सत्य का तत्व सर्व साधारण के सम्मुख प्रकट कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि योग सहज है! इस सहज योग के साधन से साधक सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

'मन को योगी बनाना' यही सहज योग की साधना है। योग का अर्थ है जोड़ना मिलना। मन को महा मन में, प्राण को महा प्राण में, आत्मा को परमात्मा में व्यष्टि को समिष्ट में, स्वार्थ को पर-मार्थ में मिलाना, जोड़ना यही योग की प्रक्रिया है। अपने सत् चित् आनन्द स्वरूप को पहचान कर जब आत्मा अपने वास्तविक स्थिति को समझ लेता है और आध्यात्मिक भूमिका में जागृत होता है तो उसके जीवन का दृष्टि कोण ही बदल जाता है। जो अपने आपको अविनाशी आत्म भाव में जाग पड़ता है उसे अपना शरीर एक वस्त्र के समान प्रतीत होता है। जैसे हम सब कपड़े के हानि लाभ की अपेक्षा शरीर के हानि लाभ को अधिक महत्व देते हैं उसी प्रकार आत्म भाव में जगा हुआ मनुष्य शारीरिक हानिलाभ, सुख-दु उन्नति-अवनति, सम्पत्ति विपत्ति की परवा न कर हुआ आत्मा के हित चिन्तन में तल्लीन रहता है

मन को हृदय से बुद्धि को अन्तःकरण से यो कर देने, जोड़ देने मिला देने से मनुष्य की अन्त दृष्टि बदल जाती है उसका दृष्टिकोण दूसरा हो जाता है। अयोगी मायाबद्ध, भव कूप में पड़े हुए मनुष्य शरीर के लाभ हानि की दृष्टि से, हर बात को सोचते और कार्य करते हैं किन्तु योग बुद्धि वाला व्यक्ति आत्मा के हित अहित का ध्यान रखता हुआ अपने संपूर्ण विचार और कार्यों को करता है शरीर वादी लोग इन्द्रिय भोगों की तृप्ति में सुख अनुभव करते हैं, उन्हें स्वादिष्ट भोजन, मनोरंजक दृश्य, नृत्य, गीत, वाद्य, काम क्रीड़ा, वस्त्र आभू-षण, महल, मोटर, सेवक, धन, ऐश्वर्य आदि की आकांक्षा रहती है, इन वस्तुओं की वृद्धि में सुख और कमी में दुख अनुभव होता है। इनको प्राप्त करने में वह उचित अनुचित के विवेक को भी भूल जाता है और जैसे भी यह चीजें मिल सकें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। पर योगी का दृष्टिकोण दूसरा होता है वह इन्द्रिय भोगों को भोगने में या भौतिक सम्पदाऐं इकट्ठी कर लेने में सुख नहीं मानता क्यों कि उसने अपना वास्तविक स्वरूप शरीर नहीं माना है। "मैं अविनाशी आत्मा हूं" ऐसा विश्वास करने वाला योगी अपने आत्मा का हित अहित जिसमें देखता है उसमें ही सुख दुख अनुभव करता है। शरीर रजोगुण में सुख पाता है आत्मा को सतोगुण में आनन्द है। आत्म-भावी व्यक्ति के कर्मों में सतोगुण की प्रधानता रहती है। वह सद्भाव, सद्गुण और सत्कर्म अपनाता है। प्रेम दया, सहानुभूति, उदारता, नम्रता एवं मधु-रता से उसकी हर एक बात सनी हुई होती है। संयम उसका व्रत होता है। सेवा उसकी कार्य प्रणाली होती है। उसका दृष्टिकोण सेवा से परिपूर्ण

रहता है। हर काम को वह सेवा वृत्ति से, कर्तव्य बुद्धि से, यज्ञ भावना से करता है। भावना के अनुसार ही हर काम का मूल्य निर्धारित होता है। यज्ञ भावना से जो काम किये जाते हैं उनका रूप वाह्य दृष्टि से कैसा ही क्यों न हो पर उनका फल यज्ञ रूप ही होता है, सेवा भावना से किया हुआ छोटा कार्य भी महान पुण्य फल का देने वाला होता है। इसी प्रकार दुर्भावना से किये हुए उत्तम दीखने वाले काम भी पाप रूप हो जाते हैं।

'सहज योग' सचमुच बड़ा सहज है। इसमें व्रत, उपवास, नोति, धोति, वस्ति, न्योली, कपाल भांति, आसन, प्राणायाम, आदि किसी प्रकार की खटखट नहीं है। केवल अपने मनको हृदय से जोड़ देना है। कबीर साहब ने एक स्थान पर लिखा है कि जीव से परमात्मा चौबीस अंगुल दूर है। मस्तिष्क से हृदय चौबीस अंगुल है। इस दूरी को पार करते ही इस यात्रा को पूरी करते ही स्वर्ग के द्वार में पदार्पण हो जाता है। हृदय की अन्तःकरण की जैसी पुकार हो, आज्ञा हो उसी के अनुसार मन एवं बुद्धि आचरण करे हृदय और मन की इच्छाऐं प्रथक प्रथक न रह कर एक हो जांय। मनुष्य जो भी कार्य करे उसमें अन्तःकरण का आत्मा का स्वार्थ हित, पसंदगी का चुनाव प्रधान हो तो वह कार्य यज्ञ मय होगा, ऐसे यज्ञ मय कार्यों की हर एक क्रिया योग साधना के सामान हैं। उसे करते करते मनुष्य अभीष्ट सिद्धि को ब्राह्मी स्थिति को, प्राप्त कर लेता है।

इस सहज योग की प्रधान प्रकृया 'मन को योगी' करने की है। इसकी साधना विधि यह है कि अपने आपे में जागरुक रहने का हर घड़ी प्रयत्न करना चाहिए, "मैं अविनाशी आत्मा हूँ। शरीर मेरा वस्त्र मात्र है, मैं जो कुछ करूँगा वह आत्मा के हित की दृष्टि से करूँगा" इस भावना मंत्र को सदा मन में दुहराते रहना चाहिए और बार बार तीक्ष्ण दृष्टि से यह निरीक्षण करते रहना चाहिए कि हमारे विचार और कार्य नियत भावना के अनुकूल है या नहीं। यदि उसमें त्रुटि या प्रतिकूलता प्रतीत हो तो सावधान होकर तुरन्त उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार नियम पूर्वक निरन्तर आत्म निरीक्षण करते रहने और सत्भाव, सद्गुण, सत्कार्यों को अधिकाधिक मात्रा में धारण करते रहने से धीरे धीरे कुछ ही समय में यह वृत्ति स्थायी होकर आदत में सम्मिलित हो जाती है। तब मनुष्य को अपना सहजयोग ऐसा ही साधारण मालूम पड़ता है जैसा कि दुनियांदार आदमी को अपने दैनिक कार्य साधारण मालूम पड़ते हैं।

सच्चे हृदय से मनको जोगी करने वाला, बुद्धि को आत्मा से जोड़ देने वाला सच्चा सहज योगी महात्मा एवं तपस्वी है। वही प्रभु को प्यारा लगता है और प्रभु को प्राप्त करता है। भले ही उसका वेश और पेशा साधारण मनुष्यों का सा बना रहे। महात्मा कबीर कहते हैं—

सांई सों सांचा रहो, सांई सांच सुहाय।
भावे लम्बे केश रखि, कावै मूँड़ मुड़ाय॥

———

गृहस्थ के परिमित व्यय पर उतनी ही बुद्धि से काम लेना चाहिये। जितना किसी साम्राज्य पर राज्य करने में।

× × ×

थोड़े भी अपरिमित व्यय से सावधान रहो, ज़रासा छिद्र होने से ही बड़े बड़े जहाज डूब जाते हैं।

× × ×

सबसे बहुमूल्य और सुरक्षित धन अपनी सम्पत्ति से, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो, सन्तुष्ट रहना है।

× × ×

पतिव्रत-योग।

(राजकुमारी रत्नेश कुमारी जी-मैनपुरी स्टेट)

पतिवृत का नाम सुनते ही आधुनिक काल के बहुत से व्यक्ति व्यंग पूर्वक मुस्कराने लग जाते हैं उनका विश्वास है कि इस सुन्दर शब्द जाल के पीछे दासता, परवशता तथा अत्याचार छिपा हुआ है। इसके विषय में मैं तो यही कहूंगी कि भले ही कुछ गृहों में उसका ऐसा विकृत स्वरूप अपने प्राचीन आदर्शों को विस्मृत कर देने से हो पर स्वभावतः उसका यह स्वरूप नहीं है । यह भी एक ईश्वरोपासना का प्रकार है।

इसका प्रधान साधन है पतिरूपी मूर्ति में ईश्वर को पूजना। यह इस विश्वास पर अवलम्बित है कि ईश्वर सर्व-व्यापक है यदि पत्थर की मूर्ति में पूज कर उससे अभिन्नता प्राप्त की जा सकती है तो चेतन में उसकी पूजा करने से उपरोक्त सिद्धि क्यों न लाभ होगी? दूसरा एक कारण और भी है कि जिसको सबसे अधिक प्यार करो उसका ही ध्यान अधिकतम काल तक किया जा सकता है। और जिसका ध्यान जितना ही अधिक काल तक किया जासकेगा उसको ईश्वर भाव से पूज कर उतनी ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इस साधना में यह सुगमता भी है कि ईश्वर का वैसे ध्यान करने में कल्पना कठिन हो जाती है और मूर्ति में ध्यान करने में प्रारम्भिक काल में साधक को अपना प्रेम एकाङ्गी सा प्रतीत होता है दूसरी ओर से उसे प्रोत्साहन दान की अनुभूति नहीं हो पाती है पर इस प्रतिबृत साधना के प्रारम्भिक काल में भी साधिका अनुभव करती है कि प्रभु पति की आंखों से मायालु भाव से उसको देख रहा है। उसके वरंद हस्त उसकी रक्षा तथा कामना पूर्ति को सदैव प्रस्तुत है उसको अनुराग भरी वाणी [illegible] है ये भावनाएं उसके प्रेमोन्माद को बढ़ा कर प्रभुमयी बना देती हैं और वह मुनि दुर्लभ सिद्धि को अनायास प्राप्त कर लेती है।

पति प्रेम यदि प्राप्त न हो तो यह साधना कुछ कठिन अवश्य होजाती है पर निराशा का अन्धकार अभेद्य नहीं होने पाता, क्योंकि उसके पास इस विश्वास का मणि दीप रहता है कि यदि उसका प्रेम सच्चा एवं अनन्य है तो एक दिन अवश्य ही इन सभी विघ्नों पर उसको विजय प्राप्त होगी तथा भगवान उसको अभिन्नात का वर देंगे। और जीवनपथ पर वह एक त्यागवीर की भांति सानन्द आत्मो उत्सर्ग करती हुई चलती है और निस्सन्देह विजयिनी बनती है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि क्या पतिवृत साधना का ध्यानयोग ही साधन है ? उत्तर में निवेदन यह है कि ईश्वर प्राप्ति के सभी साधन इसमें सम्मिलित है कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग शरणयोग, सतसंग, तप, सन्यास इत्यादि प्रधानत किसी भी साधन की हो सकती है शेष सब अन्तर्गता रहेंगे उल्लेख प्रधान का ही किया जायेगा। स्मर्ण रहे उपरोक्त कोई भी साधन ध्यान योग के बिना सफल नहीं हो सकते अतएव उसको प्रधान मानने को हम विवश ही हैं।

अब यह वर्णन करूंगी कि पतिवृत साधना में इन साधनों का क्या स्वरूप रहता है? ईश्वर स्वरूप पति को मानते हुए उसके ही हित निस्वार्थ-भाव से तन, मन और वाणी की प्रत्येक क्रिया ही यही कर्मयोग है । पति को ईश्वरभाव से ध्यान करते हुए एकमात्र उसी का आश्रय लिये रहना और किसी से भी किसी प्रकार की याचना का भाव मन में न रहने देना और यही मेरा सर्व प्रकार से कल्याण करने में समर्थ है यही शरण योग है। हर समय पति में ईश्वर का ध्यान करना उसमें अहम् भाव को खो देना ही ज्ञान-योग है।

अर्पित करके उनकी सेवा में मन वाणी तथा कर्म से संलग्न रहना ही भक्ति योग है। पतिव्रत की साधना में जो भी विघ्न स्वरूप कष्ट मनोवेदनाएं आयें उनको वीरता पूर्वक सहन करना हताश होकर प्रयत्न न छोड़ना ही तप है। सब तरफ से आसक्ति हटा कर पति रूपी परमात्मा में ही तद्गत रहना सन्यास है। सतियों के चरित्रों का अनुशीलन तथा यदि सम्भव हो तो उनके दर्शन तथा उनके उपदेशों का श्रवण तथा मनन ही सत्संग है।

मेरे इस स्वल्प ज्ञान से किसी को जीवन पथ पर कुछ सहायता अथवा शंका निवारण हो सका तो इस लेख को सार्थक समझूंगी।

रसायनें समाप्त होगईं।

अखण्ड ज्योति द्वारा जो दो रसायनें वितरित की गई थीं। उनसे आश्चर्य जनक एवं आशातीत लाभ हुआ है। ओज वर्धक रसायन से आठ पागलों के स्वस्थ होजाने और अनेकों के अनेकों प्रकार के मानसिक रोग दूर हो जाने की सूचनाऐं आई हैं। सैकड़ों व्यक्तियों ने स्मरण शक्ति बढ़ने की कृतज्ञता पूर्वक सूचनाऐं भेजी हैं। उस औषधि की अत्यधिक मांगें आ रही हैं परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि अब ओज वर्धक रसायन बिलकुल ही समाप्त होगई है। वे जड़ी बूटियां फिर से आने में अभी कई महीने की देर है, इसलिये कोई सज्जन डाक खर्च के पैसे न भेजें, जो भेजेंगे उनके लौटा दिये जायंगे। हां, गर्भ पोषक रसायन थोड़ी सी बची है। उसे सिर्फ वे ही लोग मँगावें जिन्हें तात्कालिक आवश्यक है। भविष्य की आशा के लिए कोई सज्जन न मँगावें, क्यों कि ऐसा करने से तात्कालिक आवश्यकता वालों को वंचित रहना पड़ेगा।

विकाश में आनन्द है

(काका कालेलकर)

मनुष्य दुःख नहीं चाहता, फिर भी जीवन में दुःख तो है ही। और दुःख ही नहीं; उसका उपभोग भी है। दुःख से अनुभव-समृद्ध बन जाते हैं, हमारा व्यक्तित्व, या गीता की परिभाषा में कहें, तो हमारा 'अध्यात्म' बढ़ता है। (गीता में 'स्वभावो अध्यात्म उच्यते' व्याख्या की गई है. वहां स्वभाव से मनुष्य के कर्तव्य का मतलब निकलता है, और इसी को अध्यात्म भी कहा जाता है) हमदर्दी के कारण हमारा व्यक्तित्व हमारे शरीर से अलहदा होकर, इन्द्रियों का बन्धन तोड़कर और संकुचितता से निकल कर विकसित है और हमारी देह से भिन्न व्यक्तियों, मूर्तियों, घटनाओं और तंत्रों के साथ एक रूप होजाता है। व्यक्तित्व का यह विकाश ही आनन्द है। साधारण तौर पर अस्वस्थ या स्वस्थ दशा में मनुष्य को अपनी शक्ति का भान नहीं रहता। दुःख या संकट के मौके पर उसकी शक्ति प्रकट होती है। शक्ति का यह जन्म उस कष्ट दायक भले ही हो, फिर भी अनुभव लेने को अपनी शक्ति का ज्ञान होजाना तो मनुष्य के लिये कम सन्तोष देने वाला नहीं होता। विज्ञान के प्रयोग, युद्ध के पराक्रम और जीवन के तजुर्बे ये सभी हमें अपने अध्यात्म के विकास का आनन्द प्रदान करते हैं। जिस व्यक्तित्व के विकास की जो कला या कौशल है वही योग है। शिक्षा का उद्देश्य भी अध्यात्म का विकाश ही है।

व्यक्तित्व का विकास या तादात्म्य होना ही आनन्द का स्वरूप है। पर, जब यह आनन्द भूल से इन्द्रियों को तृप्त करने की कोशिश करता है तब इस रस की धारा आत्मा को संकुचित कर डालती है। इसके अन्त में विरसता, ग्लानि, दुःख और पछतावा ही हाथ लगता है।

सच्चे सौन्दर्य को प्राप्त करना।

सौन्दर्य कितना नयनाभिराम होता है। सुन्दरता को देखने के लिए आंखें कितनी लालायित रहती हैं। जीवित वस्तुओं की शोभा निराली है। उसकी हर एक क्रिया में सौन्दर्य भरा होता है। प्राणियों की शरीर रचना, कान्ति, बोली, हलचल, विचार प्रणाली और क्रिया पद्धति सौन्दर्य से परिपूर्ण है। मनुष्य से लेकर चींटी तक विभिन्न आकृतियों के प्राणी अपने अपने क्षेत्र में अनुपम शोभा युक्त हैं। उनकी विभिन्न गतिविधियां देखने वाले को अनोखेपन की आश्चर्य युक्त प्रसन्नता में सराबोर कर देती हैं। बालक से लेकर बूढ़े तक सभी में सौन्दर्य है। बालक का सरल, युवक का मादक और वृद्ध का गम्भीर सौन्दर्य यद्यपि आकृति में भिन्न भिन्न प्रकार का है तो भी अपने स्थान पर हर एक ही अनोखा है।

जिन नयनाभिराम सौन्दर्य को देखने के लिए हम सदा लालायित रहते हैं वह कहां रहता है आइये इस प्रश्न पर विचार करें। क्या वह शरीर में रहता है ? नहीं; शरीर में स्वयं कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो इस प्रकार का सौन्दर्य प्रकट कर सके। देह में से जीव के निकल जाते ही उसकी कुरुपता स्पष्ट हो जाती है कोई जीव कितना ही रूप यौवन सम्पन्न हो कितना ही मनोहर लगता हो उसका प्राण निकलते ही वह सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। और घृणित कुरुपता, दुर्गन्ध एवं अस्पर्शता उसमें प्रकट हो जाती है। देह की घृणित अवस्था जो प्राण की उपस्थिति के कारण छिपी हुई थी प्राण के निकलते ही खुल जाती है। मरा हुआ देह कितना कुरुप लगता है इसे सभी जानते हैं। कुछ ही समय उपरान्त वह सड़ने लगता है, दुर्गन्ध आने लगती है और कीड़े पड़ जाते हैं। प्राणियों के अतिरिक्त बनस्पति का भी यही हाल है. जब तक पेड़ पौदे हरे भरे हैं तब तक उनका सौन्दर्य है, जब वे निष्प्राण होजाते हैं, सूख जाते हैं तो उनकी सारी मनोहरता नष्ट होजाती है।

इससे प्रकट होता है कि सौन्दर्य का उद्गम केन्द्र आत्मा है। जड़ पदार्थ तो उसके सौन्दर्य को प्रकट करने के माध्यम मात्र हैं। जीवों का सौन्दर्य, आदर, और बड़प्पन उनके शरीर की स्थूलता या आकृति से नहीं वरन् आत्मिक स्थिति के अनुसार आंका जाता है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से मनुष्य पीछे है तो भी वह बड़ा है। यह बड़प्पन उसकी आत्मिक योग्यता के अनुसार है। मनुष्यों में भी प्रभुता उनको मिलती है जिनमें आत्म बल अधिक है। जिनमें प्राण शक्ति अधिक है वे ही सुन्दर हैं। महात्मा गान्धी का सौन्दर्य, हजारों फिल्म या नाटक में नाचने वाले तथा कथित सुन्दर अभिनेताओं से अधिक है। गार्गी और मैत्रेयी की सुन्दरता के सामने दुनियां भर को कियां मिलकर भी फीकी रहेंगी।

सौन्दर्य का मूल स्रोत आत्मा है। सत्य और शिव होने के साथ साथ आत्मा ही 'सुन्दर' गुण वाला भी है। उसके अतिरिक्त और कोई सुन्दर पदार्थ इस सृष्टि में नहीं है। जड़ पदार्थों में जो सौन्दर्य दिखाई पड़ता है वह भी जीवित शक्ति का ही दिया हुआ है। बड़े बड़े महल, यंत्र, सामान आविष्कार, प्राण शक्ति द्वारा ही निर्मित होते हैं। कुरुप वस्तुओं को आत्मा ही अपनी सामर्थ्य से सुन्दर बनाता है। प्रकृति की रचनाओं का सौन्दर्य भी आत्मा द्वारा ही अनुभव होता है। यदि नेत्रों में जीवन शक्ति न हो तो अन्धे मनुष्य के लिए चन्द्र, सूर्य, तारागण, नदी, पर्वत, झरने, बादल, बिजली आदि का सौन्दर्य वृथा है. इन सब चीजों से उस अन्धे पुरुष को जरा भी रस नहीं मिल सकता। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के अभाव में अन्य प्रकार के सौन्दर्य भी अनुभव के अस्तित्व में प्रकट नहीं हो सकते।

वैसे ही अप्रकट रहेंगे जैसे कि सूक्ष्म परमाणुओं की नानाविधि हलचलें सृष्टि में निरन्तर अपनी विचित्र शोभा के साथ जारी रहती हैं पर हम उनका न तो कुछ प्रकट अनुभव कर पाते हैं और न उनसे कुछ विशेष रस ले पाते हैं। इसी प्रकार इन्द्रिय शक्ति के अभाव में वह सब भी अदृश्य रहेगा जिसे हम प्राकृतिक सौन्दर्य कहते हैं।

निस्संदेह सौन्दर्य का मूलभूत स्थान आत्मा है। उसका अस्तित्व, स्थिति एवं इच्छा ही सौन्दर्य की जननी है। जब कोई प्राणी जीवित रहता है तो अपने ढंग से सुन्दर लगता है, जब किसी प्राणी की चतुरता, स्फूर्ति, चैतन्यता, विवेक एवं अनुभवशीलता अधिक होती है तो इन भावों के कारण ही अपने क्षेत्र में सुन्दर दृष्टि गोचर होता है। इसी प्रकार रुचि, इच्छा और आकांक्षा के अनुसार भी वस्तुओं का सौन्दर्य घटता बढ़ता है। एक के लिए मद्य अत्यन्त घृणित अस्पर्श्य है पर दूसरा उस पर सब कुछ न्योछावर किये बैठा है। एक व्यक्ति वेश्या में घृणित कुरुपता देखता है दूसरे के लिए वही स्वर्ग की अप्सरा है। पत्नी को अपना पति, माता को अपना पुत्र, अत्यन्त ही मनोरम लगता है भले ही वह दूसरों की दृष्टि में कुरुप हो। आत्मा का प्रकाश जिस पर पड़ता है वही सुन्दर हो जाता है। यह संसार घन घोर अन्धकार के समान है इसमें अनेकों प्रकार की वस्तुऐं रखी हुई हैं, पर प्रकट वे ही होती हैं जिन पर आत्मा रूपी दीपक का प्रकाश पड़ता है। यह प्रकाश जितना अधिक पड़ता है उतनी हो वे झिलमिलाती हैं, सुन्दर लगती हैं। यह दीपक जितना ही धुँधला या मन्द होगा वस्तुओं की जगमगाहट भी उतनी ही फीकी हो जायगी।

यदि आप सौन्दर्य प्रिय हैं, सुन्दरता को पसन्द करते हैं मनोरम चीज़ों में दिलचस्पी रखते हैं, खूब सूरती के उपासक हैं, सजावट, सफाई, और

सींचिए। पत्तों के छिड़कने से काम न चलेगा, जड़ में पानी देना पड़ेगा। शरीर, वस्त्र, घर आदि को सुन्दर बनाना आवश्यक है पर इससे भी अधिक आवश्यक जीवन को सुन्दर बनाना है। अग्नि में जितना ईंधन पड़ता है उतनी ही वह अधिक प्रज्वलित और प्रकाशमान होती है। इसी प्रकार अन्तःचेतना को सात्विकता से जितना समन्वित किया जाता है, उतना ही सच्चे सौन्दर्य का प्रकाश प्रस्फुटित होने लगता है। दीवार को पोतने और रंगने से वह अच्छी दीखने लगती है पर मनुष्य दीवार से अधिक है वह शृङ्गारदान की सजावटी पेटी के आधार पर ही सुन्दर नहीं बन सकता। भीतरी सजावट से मनुष्य शोभा को प्राप्त होता है। ज्ञान से, विद्या से, ब्रह्मचर्य से, संयम से, व्यायाम से, पुरुषार्थ से मनुष्य स्वर्ण के समान कान्तिमय बनता है पर उस कान्ति में भी तब चार चाँद लग जाते हैं जब सद्गुण, सद् विचार, सद्भाव और सत्कर्मों द्वारा आत्मा की दिव्य चेतना को प्रदीप्त किया जाता है। आत्मा की सतोगुणी उन्नति में जो सौन्दर्य का दर्शन करता है यथार्थ में वही सुन्दरता का सच्चा पारखी है।

सौन्दर्य के उपासक को सूक्ष्म दर्शी होना चाहियें। किसी के शरीर को जब सुन्दर देखा जाय तो उस बीज भूत आत्मा की महिमा का आनन्द अनुभव करना चाहिए कि वह सत्ता कैसी महान है जिसके स्पर्श से हाड़ मांस जैसे घृणित वस्तुऐं ऐसी जगमगा रहीं हैं। जब प्रकृति के सौंदर्य को देखें तो अनुभव करना चाहिए कि परमात्मा कितना सुन्दर है जिसकी कारीगरी में ऐसी अद्भुत छटा छहर रही है। सृष्टि के सभी पदार्थ अपने अपने ढंग से सुन्दर हैं। कुरूपों में भी एक विशेष प्रकार का, अपने ढंग का सौन्दर्य है। सजीव सृष्टि में सर्वत्र सौन्दर्य ही भरा पड़ा है। इस सुन्दरता का उद्गम आत्मा है, परमात्मा है, उसी तत्व को यदि

दैवी-सहायता।

(कुँ० मनबोधनसिंहजी, सब इन्स्पेक्टर पुलिस)

गत मास यहाँ पर श्रीनगर (हमीरपुर) में एक काछी जिसकी अवस्था करीब ६० साल है किसी प्रकार अचानक कुए में गिर गया रात का वक्त था कोई मनुष्य पास न था अन्दर ही अन्दर चिल्लाया। कुवां के अन्दर गिरने के एक आध घन्टा बाद कुछ लोग गांव के आये और रस्सी डाल के उसे जिन्दा निकाल लिया।

दो दिन पश्चात मैंने उसे थाने में बुलाकर सब हाल पूछा तो उसने कहा कि मुझको तैरना नहीं मालूम था इसलिए जब वहां कुआं के अन्दर फड़-फड़ाने लगा तो कुँए में ही उसे एक दूसरी आत्मा मनुष्य रूप में मिलगई। उसने उसे (काछी को) अपने कन्धे पर बैठा लिया और कहा कि घबड़ाना नहीं। उसी कुँए में एक सांप था जो उसके ऊपर चढ़ गया किन्तु उस परम आत्मा ने उस सांप को हाथ से हटाकर दूसरी ओर कर दिया और कह दिया कि खबरदार इसको न काटना। सांप बेचारा दूसरी तरफ़ कुँवा में पड़ा रहा और फिर उसके ऊपर नहीं आया। थोड़ी देर में हल्ला गुल्ला सुनकर गांव वाले आ गए और रस्सी डाल के जिन्दा निकाल लिया और बचाने वाला अन्तर ध्यान हो गया। इस घटना से प्रकट होता है कि ईश्वरीय शक्तियां अनेक अवसरों पर मनुष्य की सहायता करती हैं। परमात्मा की कृपा होने से मनुष्य मृत्यु सरीखे संकटों को भी पार कर जाता है।

जाको राखे सांइयां, मार न सकता कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय॥

सुख इन्द्रियों को सुन्दर चीजों द्वारा मिलता है। उससे असंख्यों गुना आनन्द उपलब्ध कर सकते हैं। सौन्दर्य की मूल सत्ता का रसास्वादन करने वाले—आत्मा का सान्निध्य रखने वाले ही अगाध

जागृत-जीवन।

(ले०—ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्त शास्त्री बी० ए०, रेवाड़ी)

मानव समाज में अनेकों व्यक्ति प्रगतिशील जीवन को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु इनमें से बहुत थोड़े ही अपने अभीष्ट सिद्धि को पाते हैं। वास्तव में सिद्धि को प्राप्ति के दो मुख्य साधन हैं—(१) बुद्धि और (२) आशा संयुक्त उद्योग। जो व्यक्ति इन दो साधनों को तत्परता से ग्रहण करता है वही सिद्धि को पाता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने कर्त्तव्य के पालन में सतत् जागरूक रहना ही मानव की महानता का द्योतक है। संसार में निराशा अन्धकार उत्साह हीनता आदि आदि हीन प्रवृत्तियों का ही अधिक बोलबाला है। किन्तु जागृत-जीवन को भोगने वाले वीर पुरुष अपना एक नया ही संसार रखते हैं। वे आशामय उत्साह-प्रद वायु मण्डल के विधाता होते हैं। जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणों से गहनतम अन्धकार तथा भूमि पर की अपवित्रता को प्रकाश और पवित्रता में परिणत कर देते हैं इसी भांति जागृत आत्मायें अकर्मण्यता और निराशा के वायुमडल को सक्रिय एवं आशामय बना देते हैं।

इस वीर भोग्या वसुन्धरा पर निश्चय ही वे प्राणी धन्य हैं जिनमें आत्म जागृति हो गई है। जो इस जागृति को प्राप्त कर लेता है वह चिर अमर जीवन का शाश्वत आनन्द भोगता है। अपने अपने घर में वैयक्तिक जीवन तो सभी भोगते हैं, परन्तु जागृत आत्माएं न केवल स्वयं सुख का उपभोग करती हैं अपितु अखिल विश्व को अपने आत्मीयभाव से ओत प्रोत करके सर्वहित के संपादन में अपने को लीन-समर्पण कर देती हैं। एक जलता हुआ दीपक अनेकों दीपों को जलाता है और अपनी प्रकाश की विभूति का विस्तार करता है, इसी भांति जागृत प्राणी अनेकों को जागृत

हमारी आयु क्षीण कैसे होती है

(प्रोफेसर श्री० रामचरणजी महेन्द्र
एम. ए. डी लिट् डी. डी.)

संसार में सबसे बहुमूल्य पदार्थ मनुष्य को अपना शरीर है। वह दिन रात यही उपक्रम करता है कि मर न जाय, आयु क्षीण न हो जाय, मृत्यु का कटु सत्य दूर दूर ही रहे। एक प्रकार से मृत्यु-निवारण व्यापारों की समष्टि ही हमारा जीवन है।

मृत्यु के कई जासूस हमें निरन्तर घेरे रहते हैं और प्रकट अप्रकट रूप में अपना कार्य गुपचुप रीति से किया करते हैं। ये गुप्त दूत हैं हमारी शंकाएँ, चिंताएँ और अप्राकृतिक आदतें। इन तीनों कारणों से हम अपने वास्तविक जीवन से बहुत दूर जा पड़ते हैं। हम इन तीनों के गुप्त कार्य को निर्दोष समझ कर उधर से नेत्र मूंद लेते हैं और किसी प्रकार की क्षति का अनुभव नहीं करते। यह हमारी भारी भूल है।

मनुष्य अपनी आदतों का दास है। कई आदतें बाहर से देखने में बहुत साधारण एवं निर्दोष मालूम होती हैं किन्तु रासायनिक दृष्टि से उनका प्रभाव विष तुल्य पड़ता है। अनेक व्यक्ति श्वास क्रिया के अज्ञान के कारण अनेक यंत्रणाएँ सहन करते हैं, झुक कर और मेरुदंड नीचा किये रहते हैं, कितने ही व्यक्ति व्यर्थ के कार्यों में अपनी शक्ति का अपव्यय किया करते हैं। कुछ हमेशा तने रहते हैं, उन्हें सदैव क्रोध ही चढ़ा रहता है। कुछ रुपये पैसे के लोभ में पड़ सदैव कार्य में लगे रहते हैं और पेशियों को शिथिल नहीं होने देते। कुछ सदैव बेचैन रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे किसी अव्यक्त मनुष्य की खोज में निरत हों। वे सदैव विक्षुब्ध बने रहते हैं।

उद्वेग, चिंता, दौड़ धूप, शक्ति का अपव्यय, व्यर्थ की उत्तेजना मनुष्य की आयु क्षीण करते हैं। है। आवश्यकता से अधिक खा जाना, खाना न चबाना, गरिष्ठ पदार्थों, मादक द्रव्यों का सेवन आमाशय में कई प्रकार के भयंकर विष उत्पन्न करता है। शहर के पके हुए स्वादिष्ट पदार्थ, मिठाइयां, नमकीन, सोहनहलुवा इत्यादि पाचन की मशीन को अस्त व्यस्त करते हैं। मनुष्य प्रकृति से जितना दूर हटता जा रहा है उतनी ही औसत आयु कम होती जा रही है। विलासी जीवन, मन का असंयम, श्वाँस सम्बन्धी बुरी आदतें, उद्विग्नता हमें मृत्यु के पास खींच रही है। अपवित्रता, असंयम, विलास, अप्राकृतिक रहन सहन से आयु की क्षीणता का घनिष्ट सम्बन्ध है।

यदि हम भोजन के कुपथ्य से मुक्त रहें, जीभ पर काबू रक्खें, मानसिक उत्तेजनाओं, चिंताओं, तथा कुकल्पनाओं से बचे रहें, फलों, शाक तरकारियों का यथाशक्ति सेवन करते रहें, उचित व्यायाम, दूध, इत्यादि का प्रयोग करते रहें और उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास रक्खें तो आयु हमारी मुट्ठी में रहेगी।

पाठकों को दो सूचनाएं !

(१) पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इस मास में अखण्ड ज्योति के दो पृष्ठ बढ़ाये जा रहे हैं। अब २२ के स्थान पर २४ पृष्ट निकला करेंगे। सन् ४६ से पृष्टों में और भी अधिक वृद्धि होगी, पर मूल्य यही रहेगा।

(२) जनवरी ४६ का विशेषाङ्क मनोविज्ञान अंक होगा। इसका सम्पादन पाठकों के सुपरिचित मनः शास्त्र विशेषज्ञ डाक्टर रामचरण जी महेन्द्र कर रहे हैं। इस अंक में मनः शास्त्र संबंधी अद्भुत एवं अलभ्य सामिग्री होगी। पृष्ट संख्या साधारण अंक से दूनी के करीब होगी। डाक्टर साहब इस अंक में गागर में सागर भरने का प्रयत्न कर रहे हैं।

गन्ध योग का साधन।

(संकीर्तन)

पंचतत्वों में पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल है और उन की तन्मात्रा गन्ध भी दूसरी तन्मात्राओं की अपेक्षा सुग्राह्य। अतएव सबसे अधिक विकसित इन्द्रिय नासिका मानी जाती है। स्वेदज प्राणियों में भी नासिका का विकास पाया जाता है। वे सूंघकर ही अपने आहार का पता लगाते हैं। इसी प्रकार आन्तर शब्दादि के जागृत करने में भी सबसे सुलभता से गन्ध ही जागृत होती है। थोड़े ही दिनों में साधक को गन्ध का अनुभव होने लगता है और तब उसके लिये साधन में रुचिका होना स्वाभाविक हो जाता है। यह गन्ध कहीं बाहर से नहीं आती। उसके भीतर से ही उसका उद्भव होता है और साधन की उच्चावस्था में वह चाहे जिस वस्तु से इच्छित सुगन्ध प्राप्त कर सकता है। दूसरों को भी उसका अनुभव करा सकता है।

प्रायः साधकों को यह अनुभव होगा कि कभी २ कोई सुगन्धि अकस्मात आने लगती है। आस पास उसका कोई कारण नहीं होता। पास के दूसरे लोगों को उसका अनुभव भी नहीं होता। लेकिन उनको तीव्रता से उसका बोध होता है। ऐसी अवस्था चलते फिरते चाहे जब हो सकती है और कभी कभी वह दो तीन घण्टे तक स्थायी भी रहती है। इसका कारण नासिका के गन्ध तन्तुओं का जागृत हो जाना है। वे किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक साधक में मन की अनुकूल अवस्था के कारण जागृत हो जाते हैं। दूसरे प्रकार के साधक स्वेच्छा से उसे जागृत नहीं करते। उसके जागृत होने के रहस्य को नहीं जानते। अतएव उनका उस पर अधिकार नहीं होता। वे उसे अपनी इच्छा से न तो पुनः जागृत कर सकते और न उसी समय उसे स्थिर रख सकते। इसके विपरीत वह विलीन हो जाती है। गन्ध के साधक उसे स्वेच्छा से जागृत करते हैं. अतः वे उसे स्थिर भी कर सकते हैं और पुनः भी चाहे जब उसका उत्थान कर सकते हैं। उनकी प्रबल एकाग्रता उसे इतना उद्दीप्त भी कर सकती है कि समीप के लोग भी भली प्रकार उस गन्ध का तीव्रता से अनुभव करने लगें।

गन्ध की साधना का मूल मन्त्र है नासिका की नोक पर त्राटक करना। एकान्त स्थान पर नीरव समय में किसी भी एक आसन से सीधे बैठकर, गर्दन को तनिक आगे की ओर झुकाकर अपलक नेत्रों से तब तक नासिका के नेत्र को एकाग्र होकर देखते रहना चाहिये, जब तक नेत्रों से अश्रु न गिरने लगें। साधन का स्थान और समय निश्चित होना चाहिये। उसे बदलना नहीं चाहिये। नासिका पर दृष्टि स्थिर करके बराबर यह भावना करते रहना चाहिये कि अब गन्ध आ रही है। प्रारम्भ में एक महीने तक साधन का आरम्भ करते समय एक गुलाब के इत्र का फाया अथवा एक गुलाब का फूल रखना चाहिये। साधन के लिये बैठने पर नासिकाग्र पर दृष्टि स्थिर करके चार पांच सेकेण्ड एकाग्र होकर उसे सूंघना चाहिये और फिर उसे पृथक करके उसी गन्ध की भावना करना चाहिये। बार बार यह सोचना चाहिये कि वही गन्ध आ रही है और मैं उसे सूंघ रहा हूं। साधन समाप्त करने पर मुख में पानी भरकर नेत्रों पर जल के छींटे देकर उन्हें भली प्रकार धो डालिये और मुख का जल थूक दीजिये। पन्द्रह बीस दिन बाद एक बार आंसू पोंछकर फिर ध्यान जमाना चाहिये। इस प्रकार इस क्रम को बढ़ाना चाहिये।

जब गन्ध स्वतः आने लगे तब इत्र या फूल का सहारा लेना बन्द करदें। उठते बैठते, चलते फिरते, खाते पीते, हर समय गन्ध के अनुभव की ओर ध्यान रखना चाहिये। सदा उसी का अनुभव करना चाहिये। गन्ध प्रायः बदलती रहेगी, कभी मधुर

ावे, उसे दूर करने का प्रयत्न न किया जावे। सी गन्ध को स्थिर रखने की चेष्टा भी न हो। जो गन्ध आती हो, तटस्थ रूपसे आप उसका नुभव कीजिये। यदि ध्यान के समय जब आप ासिका पर दृष्टि लगाये हों, कोई दृश्य दिखलाई ने लगे अथवा कोई शब्द सुनाई दे तो उसकी ओर आकृष्ट न हो, उसकी उपेक्षा करके अपने न्धानुभव पर स्थिर रहें। कहीं अन्यत्र ध्यान न ाने दें। फिर वह कितना ही महत्व पूर्ण या अद्भुत् क्यों न प्रतीत होता हो। इस प्रकार निरन्तर न्ध पर ध्यान रखने का परिणाम यह होगा कि न्ध का बदलना बन्द हो जायगा। यदि साधक न्ध प्रदर्शन के फेर में न पड़ा, यशेच्छा से दूसरों को गन्धानुभव कराने के लोभ को दबा सका तो उसे निर्गन्ध अवस्था प्राप्त होगी। यहीं मन का लय होकर समाधि अवस्था प्राप्त होती है।

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं प्राप्त हुई। अखण्ड ज्योति इनके प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

१५) श्रीमती महारानी साहिबा, मैंनपुरी स्टेट।
५) श्री बीसुदेव शर्मा, निजामाबाद।
५) श्री मोहनसिंहजी अर्जुनी, मोर गांव।
३) श्री देवीदीनजी, झाँसी।
२) पं० रतनलाल शर्मा, पूना।
२) श्री बाबूलाल निरंजन प्रसाद, कटनी।
१) श्री हरदेवप्रसादजी, मधुवनी।
१) श्री ठाकुरप्रसादसिंह, नौतनवा बाजार।
१) श्री धूमसिंह वर्मा, समौली।

चरित्र बल का आदर।

क्या आप जानते हैं कि किन उपदेशकों का, किन नेताओं का, किन वक्ताओं का, मान होता है? क्या बड़े सुन्दर भाषण करने वाले का? उनका मान तब तक ही होगा जब तक कि उनके दोषों के बारे में सब बातें लोगों को मालूम नहीं है। उनके दोष मालूम होते ही उनके वाक्य कोई नहीं सुनना चाहता। साथ ही यह भी देखा गया है कि जब कोई साधारण स्थिति का शीलवान व्यक्ति सभा में खड़ा होता है तो तुरन्त करतल ध्वनि होने लगती है। इसकी ओर लोग टकटकी लगाये रहते हैं। इससे भी मामूली बात लीजिये— व्यापार में सफलता किसे प्राप्त होती है? यहां भी दूसरे स्थानों की तरह बुद्धि का काम है ही, पर एक दूसरी शक्ति की नितान्त आवश्यकता रहती है। आप उसी दुकान पर सदा माल खरीदने जावेंगे, जहां पर सचाई, आदर और मृदुता दिखलाई पड़ेगी। बड़े-बड़े कार्यों में ही नहीं बल्कि मामूली बातों में भी शीलवान् पुरुष की शक्ति बड़ी जान पड़ती है। शारीरिक बल भी शीलके सामने फीका पड़ जाता है और बुद्धि स्तंभित होकर चुप रह जाती है। नीच वृत्तियों पर उसका ऐसा दवाव पड़ जाता है कि वे अपना प्रभाव डाल ही नहीं सकतीं। मानव समाज में यह सिद्धान्त सदैव काम कर रहा है। शीलवान् की आज्ञा तुरन्त पालन की जाती है क्योंकि उसके चहरे में एक ऐसी शक्ति झलकती है कि जो आज्ञा पालन कराही लेती है। जो उसके सामने आता है वह तुरन्त ही इसके प्रभाव के वशीभूत हो जाता है।

उसके विचार और कृत्य सबके सब नये रङ्ग में रंगे जाते हैं। रामायण की इस बात में कुछ अर्थ अवश्य है कि भरत जी पर मेघ भी अपनी छाया करते थे।

दुर्गा पूजा का तत्वार्थ ।

(श्री १०८ स्वामी शान्तानन्द जी एम० ए०)

दसभुजी दुर्गा माता सिंह और असुर पर सवार हैं। दाहिना पैर सिंह पर और बांया पैर असुर पर स्थापित है। दश हस्तों में दश विध अस्त्र शस्त्र हैं। दाहिनी ओर गणपति और सरस्वती । बायीं ओर कार्तिक (कुमार) और लक्ष्मी।

गणपति का बाहन चूहा, सरस्वती का बाहन राजहंस, लक्ष्मी का बाहन उल्लू, स्वामि-कार्तिक का बाहन मोर। महादेवी दुर्गा के ऊर्ध्व अंश में महादेव बृषभारूढ़ हैं। जिनके दाहिने हाथ में त्रिशूल और दायें हाथ में डमरू। महादेवजी के दायें बायें अनन्त कोटि देवता विभिन्न बाहनों पर आरूढ़ हैं। ब्रह्मा हंस पर, इन्द्र ऐरावत पर, यमराज महिष पर इत्यादि।

महादेवी के सन्मुख पृथ्वी पर मृण्मय कलश स्थापित है। जिस के बीच में जल, ऊपर नारियल। माता के दक्षिण दिशा में छाज पर घट, कनक, घट, दीप, पंखा, शंख आदि स्थापना का लक्ष्यार्थ यही है कि साधक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इत्यादि पांच तत्त्व और तन्मात्रा से निर्मित शरीर और मन महाशक्ति को अर्पण करते हुये परम शरणागत हो जावे।

घट में प्रेम रूपी जल में ब्रह्मानंद रूपी मीठा रस गुप्त रूप में स्थित है । घट पर सूर्यकिरण पड़ने से उसको छाया ओंकार रूप में नजर आती है।

पंच भौतिक शरीर और मन की हृदय रूपी गुफा में परमानन्द रूपी आत्मा स्थित है। गुरुदीक्षा पाकर मंत्र चेतन होने पर वही महाशक्ति अष्ट ऋद्धि सिद्धि में विभूषित होकर ज्ञान विज्ञान सम्पन्न ब्रह्म वेत्ता गुरु को जगत हितार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दाई परम शक्ति संचार का अधिकार देती है।

मन्त्र, गुरु, इष्ट अर्थात् शब्द, अर्थ लक्ष्य इन तीनों का त्रिकुटी ज्ञान न होने पर [illegible]

ब्रह्मवेत्ता ज्ञान विज्ञान सम्पन्न गुरु महादेवी की पूजा में तत्पर है। यही देवी पूजन का यथार्थ दृश्य है। इसका लक्ष्यार्थ यही है कि निर्गुण परब्रह्म ने साकार रूप धारण किया है । जिनकी दश भुजा दश दिशा हैं। दश हाथ में दश अस्त्र धारित हैं। जो विभिन्न दिशाओं में विभिन्न रूप मंगल अमंगल दरशाते हैं।

माता का दाहिना पैर सिंह पर धारण करने का गूढ़ लक्ष्यार्थ यही है कि महायोगी, महाबली, महात्यागी उद्योगी पुरुषसिंह साधक पर ही माता का दक्षिण चरण स्थापित है और महा-असुर महा-दैत्य के उपर उसका बांया चरण स्थापित है । क्यों कि देव दैत्य उभय हो माता के प्रिय पुत्र हैं । बलवान के ऊपर ही माता सन्तुष्ट रहती है । दुर्बल, निर्बल इस संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से और परलोक से बंचित रहता है। जब जब महा पाप रूप महा असुर अत्यन्त भक्त श्रेष्ठसिंह पर हमला करता है तब तब भक्त श्रेष्ठ की रक्षा करने के लिये माता संहार रूप धारण करके दुष्टों का निर्मूल करती हैं।

असुर के गले में सांप और छाती में शूल है। इसका लक्ष्यार्थ यही है कि जब माया रूप सर्प-दंशन के जहर में विह्वल होकर ऊपर ताकता है अर्थात् ईश्वर की तरफ ताकता है तो विवेक रूप भाला से छाती पर अचानक बेंधने पर महामाया के हाथ से संहार होता है अर्थात् माया मुक्त होता है।

महादेवी के अर्धांश में महादेव आदि विभिन्न देवों का भिन्न भिन्न बाहन पर आरूढ़ रहने का लक्ष्यार्थ यही है कि सब देवता सूक्ष्म रूप में देवी की असुर संहार रूपी विराट लीला दर्शन करने के लिये स्वर्ग धाम अर्थात् महाआकाश में स्थित हैं । देवी का लक्ष्मी शारदा, गणपति, कार्तिक रूपी पुत्र पुत्री-अर्थ, ज्ञान, सिद्धि शक्ति दायिनी चार क्षुद्र शक्ति दायिनी चार क्षुद्र शक्ति हैं। उल्लू, हंस, चूहा, मोर उन्हीं शक्तियों का बाहन होने का लक्ष्यार्थ है।

गणपति का आशीर्वाद पाने पर ही मूषक रूपी [illegible]

लक्ष्मीका वाहन उलूक। लक्ष्यार्थ यही है कि परमार्थी संस्कारहीन जीव पर जब इस देवी की कृपा होती है तब वह परमार्थ रूप दिवस में अन्धा होकर अनर्थ रूपी रात्रिमें पाप पंक रूपी विषयमें उन्मत्त होता है। कार्तिक का वाहन मोर यही दर्शाता है कि जब साधक रूपी मोर कुण्डलिनी महाशक्ति रूपी सर्प को भक्षण कर सकता है तभी महा शक्तिवान होकर सर्व सिद्धि सम्पन्न होते हुये महा ऐश्वर्यशाली होता है। महा-देवी वीणावादिनी शारदा साक्षात ज्ञान शक्तिकी प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। जिनके दाहिने हाथ में वेद, बायें में वीणा है। इसका लक्ष्यार्थ यही है कि ऋग्, यजुः, साम, अथर्व का परम ज्ञान इस शक्ति का दाहिना हाथ है अर्थात् ये ज्ञान दात्री हैं।

बांये हाथ में वीणा का तात्पर्य यही है कि साधक शरीररूपी वीणा के इडा, सुषमना, पिंगला रूपी तीन तारों का सहारा लेकर योग साधन करने पर साधक श्रेष्ठ परमपद को प्राप्त होकर परमहंस की पदवी में विभूषित होते हैं। परमहंस महात्मा की ही प्रत्यक्ष मूर्ति हंस रूप माता का वाहन लखाया गया है। जो माया रूपी जल त्यागकर परमानन्दरूपी दूध पान करके सदा परमपद में लवलीन है।

स्वर्ग धाम में महाबली असुर के देवताओं पर आक्रमण करने पर इन्द्र, चन्द्र, वरुण, यम आदि सब देवताओं के स्वर्गधाम से वंचित होकर भगवान की स्तुति करने पर सर्व दैवी शक्ति एकत्रित होकर महाशक्ति दुर्गारूप को धारण करके उसने असुर संहार करके देवताओं को पुनः स्वर्गराज्य प्रदान किया। भगवान श्रीकृष्ण गीता में भी यही लखाते हैं कि जब जब पारमार्थिक जीव पर अनाचारियों का अत्याचार होता है तब तब ही भगवान प्रकट होकर भक्तों की रक्षा अनाचारियों को दण्ड देकर धरती माता को आश्वासन देते हैं।

आइये हम सब उसी सच्चिदानन्द परमब्रह्म के साकार रूप के ध्यान पूजन में मग्न हो जावें। परमा-

अमृत को प्राप्त कीजिए।

साधारणतः अमृत का अर्थ वह पदार्थ समझा जाता है जो समुद्र मंथन के समय निकला था। जो देवताओं के पास है और जिसे पीने वाला अमर हो जाता है—कभी मरता नहीं।

वह देवताओं का अमृत है। पर मनुष्य लोक भी अमृत से रहित नहीं है, ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में देखने से पता चलता है। एक प्रकार के नहीं अनेकों प्रकार के अमृतों का वर्णन उपलब्ध होता है।

मेदिनी कोष में दूध को पीयूष या अमृत कहा है। "पीयूषं सप्त दिवसावधि क्षीरे तथामृते" आयुर्वेद का मत भी ऐसा ही है "अमृतं क्षीर भोजनम्" दूध मर्त्यलोक का अमृत है। राज निघंटु भी दूध को ही अमृत कहा है—'क्षीरं पीयूषमूधस्यं दुग्धं स्तन्यं पयोऽमृतम्।"

जल को भी अमृत कहा गया है। अमर कोष में "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनं" इस श्लोक में पानी का नाम अमृत बताया है।

"अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। अमृतापधानमसि स्वाहा।" इन श्रुति वचनों में जल को अमृत की समता दी गई है। अथर्ववेद में पानी को सब रोगों की दवा माना है—"अप्सु मे सामोऽब्रवीदंत विश्वानि भेषजं।"

राजनिघंटु में घृत को अमृत बताया है—"अमृतंचाभिचारश्च होम्युमायुश्चतेजसम्।"

मट्ठा या छाछ (तक्र) के लिए भी अमृत की उपमा प्रयोग की जाती है—"यथा सुराणाममृतं हिताय तथा नराणामिह तक्रमाहुः।" जैसे देवताओं के लिए अमृत है वैसे ही मनुष्यों के लिये मट्ठा हितकर है।

लौकिक रस शर्करा युक्त-भोजन भी अमृत है।

"संयावममृतं स्वादु पित्तघ्नं मधुरं स्मृतम्।" चरक में एक स्थान पर लिखा है—"अमृतं स्वादु भोजन्" अर्थात् स्वादिष्ट भोजन अमृत है।

कुछ औषधि द्रव्यों को भी अमृत की समता दी गई है। "अमृतं वै हिरण्यमित्युक्त" अर्थात स्वर्ण मिश्रित औषधि अमृत हैं। रस तंत्र में पारे के संयोग से बनी हुई रसायन को अमृत बताया है—अभ्रकस्तवजीवन्तु ममवीजन्तु पारदः। अनयोर्मेलनं देवि मृत्यु दारिद्र्य नाशनम्। इस श्लोक के अनुसार अभ्रक और पारे का संयोग मृत्यु को दूर करने वाला है। शुद्ध किये हुए विष भी अमृत कहे जाते हैं यथा—"क्ष्वेडाहेमामृतं गरदं गरलं कालकूटकम्।"

छांदोग्य उपनिषद में मधु को अमृत कहा है—"ता एवास्यामृतामधुनाड्यः।" नासपाती को "अमृतफल" कहा जाता है। आंवले के भी ऐसे गुण कहे गये हैं।

मल्लि यादव ने सूर्य की किरणों को अमृत कहा है। चन्द्र किरणों को भी अमृत की तुलना में संयुक्त किया है—"चन्द्रे अमृत दीधि तिरेष विदर्भजे भजसि तापममुष्यवै।"

ब्रह्मचर्य पालन और तप करना अमृत है "अमृतं शुक्र धारणम्" देवताओं ने भी ब्रह्मचर्यरूपी अमृत से ही मृत्यु को जीता है—"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत।"

ब्रह्मज्ञान अमृत है। कहा है—"ब्रह्मणहि प्रतिष्ठाहममृतस्या व्ययस्यच।" समता निराकुलता, मानसिक शान्ति भी अमृत है। गीता के पन्द्रहमे अध्याय में लिखा है—"सम दुःख सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।" योगी लोग खेचरी मुद्रा के साधन में सहस्रार में से ब्रह्मरंध्र द्वारा टपकने वाले अमृत का पान करते हैं। देव मंदिरों में चरणामृत या पंचामृत तो प्राप्त होता ही है।

मधुर भाषण अमृत कहलाता है। उव्वट हितोपदेश में बालकों की मधुर बोली को अमृत कहा है—'अमृतं बाल भाषणम्'।

मनु भगवान की सम्मत्ति में भीख मांगकर लिया हुआ अन्न 'मृत' और बिना मांगे अपने बाहुबल से कमाकर खाया हुआ अन्न अमृत है। यथा—'मृतंस्याद्याचितं भौद्यममृतंस्या दयाचितं।"

आप्त वचन है—"विद्ययामृत मश्नुते" अर्थात् विद्या से अमृत प्राप्त होता है। अमर कोष का आरंभिक श्लोक—"स श्रिये चामृतायच" भी ज्ञान में अमृत की उपस्थिति का संकेत करता है।

इन ऊपर कहे हुए सब अमृतोंकी अपेक्षा एक अमृत सर्वोपरि है जिसका गीता के अध्याय ४ श्लोक ३१ में भगवान कृष्ण ने वर्णन किया है—"यज्ञ शिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्" अर्थात्—"यज्ञ से बची हुई वस्तु भोगने वाले सनातन परमात्मा की प्राप्त करते हैं।" मनुस्मृति के अध्याय ३ श्लोक २८५ में भी "यज्ञ शेषमथामृतम्" यही भाव प्रकट किया है। यज्ञ अर्थात् परमार्थ के लिए त्याग। जो कुछ भी हमारे पास शक्ति सामर्थ्य और संपदा है उसका अधिकांश भाग परमार्थ के लिए लोक सेवा के लिए, आत्म कल्याण के लिए, सात्विकता की वृद्धि के लिए लगावें इन्हीं को प्रथम स्थान दें। तत्पश्चात् बची हुई शक्ति का स्वल्प भाग अपने शारीरिक भोगों में खर्च करें। इस प्रकार परमार्थ पूर्ण दृष्टिकोण रखकर जीवन का सदुपयोग करने वाला मनुष्य "अमृताशी" अर्थात् अमृत पीने वाला कहलाता है। वह जिस आनंदमयी अमरता को प्राप्त कर लेता है वह समुद्र मंथन वाला अमृत पीकर शरीर से अमर हुए देवताओं के लिए सर्वथा दुर्लभ है।

———

यह लोहे का मोरचा (जंग) ही है जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप कर्म ही उसे दुर्गति तक पहुँचाते हैं।